INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 14 | ISSUE - 1 | FEBRUARY - 2024

# डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन

निर्मला साहू
हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

**सारांश :–**

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय हिन्दी साहित्य में गल्प और इतिहास के मर्मज्ञ सुधी साहित्यकार थे। उन्होंने अपने हिन्दी साहित्य लेखन परम्परा में इतिहासपरक ग्रन्थों का वैज्ञानिक प्रस्फुटन किया है। उनके द्वारा लिखे गये ये ग्रन्थ हिन्दी की अमूल्य धरोहर है। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय हिन्दी साहित्य की अस्मिता से परिचित थे। इसीलिए उन्होंने हिन्दी की साहित्यिक धारा अप्रवाहित रूप से बहती रहे। इसका सम्पूर्ण ध्यान रखते हुये साहित्यपरक ऐतिहासिक ग्रन्थों का सृजन किया।

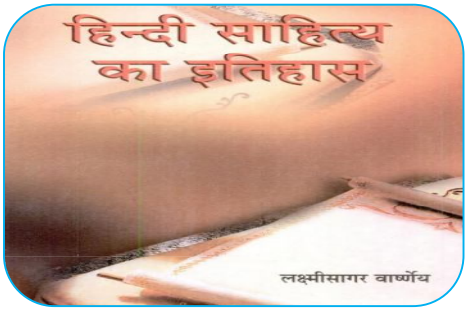


**मूल शब्द :–** डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी साहित्य और इतिहास ।

**प्रस्तावना :–**

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य का इतिहास में नीरस विषय को छोड़कर ऐसे साहित्यकारों और साहित्य की प्रधान प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है। इसका पहला प्रकाशन सन् 1972 ई. में लोकभारती प्रकाशन द्वारा किया गया, जिसके माध्यम से हिन्दी साहित्य को अधिक रोचक बनाया जा सके। लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने भौगोलिक स्थिति से उत्पन्न भाषा साहित्य और इतिहास को दृष्टि में रखते हुये इन तथ्यों का उल्लेख किया, जिससे हिन्दी प्रदेश का साहित्य फलीभूत हुआ। साहित्य की उत्पत्ति और उससे जुड़ी हुयी भाषा, बोली, विभाषा इत्यादि को डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपने इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया।

इस प्रकार हिन्दी भाषा का स्थान भारतीय आर्य, भाषाओं के बीच में पड़ता है और भाषा शास्त्र की दृष्टि से मध्यप्रदेश की आठ बोलियों को ही हिन्दी कहा जाता है। इन आठ बोलियों को ही ग्रामीण बोलियों के नाम से पुकारा जाता है। इस दृष्टि से (अर्थात् भाषा शास्त्र की दृष्टि से) हिन्दी प्रदेश के अन्तर्गत उत्तर में तराई, पश्चिम में अम्बाला और हिसार के जिले पूर्व में फैजाबाद, प्रतापगढ़ और इलाहाबाद के जिले और दक्षिण में रायपुर और खण्डवा तक का भूमि भाग आता है। हिन्दी के शास्त्रीय अर्थ की दृष्टि से काशी हिन्दी प्रदेश में नहीं है। साधारण प्रचलित अर्थ में हिन्दी के शास्त्रीय अर्थ की दृष्टि से काशी हिन्दी प्रदेश में नहीं है। साधारण प्रचलित अर्थ में हिन्दी प्रदेश की सीमायें विस्तृत है। जिनकी ओर पीछे संकेत किया जा चुका है। 1000 ई. के लगभग गंगा की घाटी में प्रयाग तथा काशी तक बोली जाने वाली शौरसेनी और मागधी अपभ्रंशो का प्रभाव स्पष्ट रूप से हिन्दी पर पाया जाता है। उस समय हिन्दी की बोलियों के निश्चित रूप भी विकसित न हो पाये थे। किन्तु जिस समय उसका रूप विकसित हो रहा था, उसी समय उसका मुसलमानों से सम्पर्क स्थापित हुआ, जिसका भाषा और साहित्य पर प्रभाव पड़े बिना न रह सका। ईसा की सोलहवी शताब्दी तक आते–आते प्राकृत और अपभ्रंश का प्रभाव मिट गया था और हिन्दी की बोलियाँ विशेषतः ब्रज और अवधी, समर्थ हो गई थी। उन्नसवी

शताब्दी में अंग्रेजों के शासनान्तर्गत खड़ी बोली को प्राधान्य मिला। यद्यपि स्फुट रूप में उसका प्रयोग अंग्रेजी से पहले भी मिलता है।[1]

## विश्लेषण :–

हिन्दी प्रदेश में साहित्य रचना की दृष्टि से ब्रज, अवधी और खड़ी बोली मुख्य बोलियाँ हैं। गत 1000 से कुछ अधिक वर्षों में हिन्दी साहित्य का यथेष्ठ विकास हुआ। ईशा की दसवीं शताब्दी से लेकर लगभग 1600 शताब्दी तक हिन्दी की बोलियों पर प्राकृतिक और अपभ्रंश का स्पष्ट प्रभाव दृष्टि गोचर होता है कि 16 वीं शताब्दी के बाद अपभ्रंश का विकास बिल्कुल घट गया और हिन्दी बोलियों ब्रज और अवधी स्वतंत्रतापूर्वक अपने पैरो पर खड़ी हो गयी। 19वीं शताब्दी के आसपास प्रेस तक अन्य आधुनिक वैज्ञानिक साधनों के साथ–साथ खड़ी बोली का प्रसार अत्यन्त तीव्र गति से हुई और 20 वीं शताब्दी में ये पूर्ण रूप से साहित्यिक भाषा बन गयी।

अपभ्रंश से हिन्दी का विकास किस चरणों से होकर गुजरा इसका डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपने ग्रन्थ हिन्दी साहित्य का इतिहास में प्रस्तुत किया हिन्दी साहित्य की सामग्री और कालविभाजन को स्पष्ट करने के लिए लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी ने अन्तः और बाह्य साक्ष्यों का स्पष्टीकरण किया।

"काल विभाजन का आधार क्या हो सकता है? स्वयं हिन्दी साहित्य के इतिहास को देखते हुये और अन्य भाषाओं के साहित्य इतिहासों को देखते हुये इस आधार की एक ऐसी निश्चित कसौटी निर्धारित नहीं की जा सकती है, जिस पर सभी इतिहासों के आधार समान रूप से किया जा सके। साथ ही संभवतः किसी भी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन के आधार पर भी प्रस्तुत होते हैं। सामान्यतः काल विभाजन का सर्वप्रमुख आधार तो प्राप्त ग्रन्थों की संख्या नहीं प्रवृत्ति विशेष का मूल प्रेरणा स्त्रोत ही है। नामकरण वास्तव में ऐसा होना चाहिये, जिससे उसकी प्रवृत्ति प्रतिबिम्बित हो सके।"[2] डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने हिन्दी प्रदेश की भौगोलिक स्थिति को पृष्ठ 9 से 14 तक, साहित्य और भाषा की उत्पत्ति 15 से 25 तक, हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और लिपि सुधार 26 से 40 तक, अपभ्रंश और हिन्दी का संबंध पृष्ठ 41 से 48 तक, हिन्दी साहित्य की सामग्री और काल विभाजन का स्पष्टीकरण 49 से 59 तक, आदिकाल पृष्ठ 60 से 106 तक, मध्यकाल 107.177 तक, मध्यकाल की पाँचवी भक्ति धारा 178 से 198 तक, उत्तर मध्यकाल 199 से 222 तक, ब्रिटिश काल 223 से 343 तक, स्वतंत्रता काल 344 से 387 पृष्ठों में वर्णित किया गया है।

डॉ. लक्ष्मीसागर हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक काल आदिकाल की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति का वर्णन किया है। जैन साहित्य, सिद्ध साहित्य और नाम साहित्य की उपलब्धियों को डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपने इस ग्रन्थ में इंगित किया है। जब धर्म तंत्र – मंत्र, टोने – टोटके की ओर अग्रसर हो रहा था और दूसरी तरफ इस्लाम धर्मानुनाइयों का भारत में प्रवेश हो रहा था। उस समय भारत वर्ष की धार्मिक उथल – पुथल का जो प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पड़ा उसको डॉ. लक्ष्मीसागरवार्ष्णेय ने अपने इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है।

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने ऐतिहासिक लेखन परम्परा के अन्तर्गत ऐतिहासिक ग्रन्थों का सुव्यवस्थित संयोजन किया है। उनका हिन्दी साहित्य का इतिहास ग्रन्थ ऐसे ही संयोजन का एक प्रमुख ग्रन्थ है। इस पुस्तक के लिखने के पीछे डॉ. वार्ष्णेय का सिर्फ यही सिद्धान्त था कि हिन्दी साहित्य की जो ढेरों पुस्तके लिखी जा चुकी है। उसमें छोड़ दिये गये पहलुओं को इन्होंने महत्वपूर्ण ढंग से संयोजित करके प्रस्तुत किया है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास अनेक साहित्यकारों के द्वारा लिखा गया है। गार्सा द तासी से लेकर रामचन्द्र शुक्ल तक इतिहास का जो स्वरूप था उससे भिन्न स्वरूप को ग्रहण करने का प्रयास डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने किया। सभी इतिहास ग्रन्थ लगभग–लगभग एक ही लीक पर चलायमान थे। साहित्यकारों ने इन्हीं ऐतिहासिक ग्रन्थों का शीर्षक बदलकर उनके सारे अंग प्रत्यंग को एक रूप में ही प्रस्तुत किया। उदाहरण स्वरूप रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखा गया हिन्दी साहित्य के इतिहास में उन्होंने स्वयं मिश्रबन्धु विनोद जैसे ऐतिहासिक पुस्तक से साहित्यकारों का परिचय प्राप्त किया है। इस बात को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्वयं स्वीकार करते हैं। इसी तरह से और अन्य जो हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ लिखे गये उनमें कुछ विषयवस्तु को छोड़कर लगभग सारी विषय वस्तु एक ही समान प्रतिभाषित होते हैं।

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने हिन्दी साहित्य का इतिहास पुस्तक लिखकर पहले के हिन्दी साहित्य के इतिहास की पुस्तकों में जो खामियाँ अथवा अवशेष बच गये थे, उसकी पूर्ति की। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय द्वारा लिखा गया हिन्दी साहित्य का इतिहास स्वमेव में मौलिक रचना धर्म में रूपायित है। इस ग्रन्थ में डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने हिन्दी साहित्य के प्रति किये गये दुर्व्यवहार एवं राजनीति को प्रदर्शित किया है। उन्होंने इस ग्रन्थ के माध्यम से यह बताने का प्रयत्न किया है कि हिन्दी में राजनीतिक गतिविधियों का प्रवेश किस आधार पर हुआ हिन्दी में राजनीति अपने प्रबल अवस्था में पहुँचकर हिन्दी की दिशा और दशा को परिवर्तित कर दिया।

अपने मूल और शुद्ध रूप में शक्ति आन्दोलन का जन्म मुसलमानों के आने से पूर्व – दक्षिण में हो चुका था, विशेषतः भारत में। दक्षिण के आलवार भक्त प्रसिद्ध है। उस समय भारत में ब्रजयानी और नाथपंथी योगियों की विचार धारा का प्रचार था। दक्षिण भारत का आन्दोलन भगवान का लीला रूप लेकर आया, जिसमें शक्ति और प्रेम प्रधान थे। कोई भी उसका आनन्द उठा सकता था। बौद्धनाथ सिद्ध यह विश्वास न दे पाये थे। भक्ति ने विश्रृंखल होते हुए हिन्दू समाज को संभाल लिया और उसे महान आदर्शों से अनुप्रमाणित किया। मुसलमानों के आगमन से अत्यन्त एक नवीन परिस्थिति के कारण उत्तर भारत में उसका अधिक प्रचार हुआ और सन्त (कबीर, सूफी, जायसी तथा वैष्णव, सूर, तुलसी) कवियों ने अपनी स्निग्ध वाणी द्वारा जनता में भक्ति का प्रचार कर उसकी रक्षा की।

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अनेक धार्मिक सुधारको जैसे – दादू, गुरुगोविन्द सिंह, प्राणनाथ आदि का उदय हुआ और हिन्दी जनता की मानसिक एवं आध्यात्मिक पिपासा शान्त हुई। सिक्खों के ग्रन्थ साहित्य का संग्रह भी इसी समय हुआ था। कवियों के ग्रन्थ भाषा, भाव, काव्यशास्त्र, काव्य सौन्दर्य आदि की दृष्टि से हमारे साहित्य की अमूल्य निधि है। इस काल में हिन्दी भाषा और संस्कृति संधि कालीन परिस्थितियों से निकलकर अपने वास्तविक रूप में स्थापित हुई। ब्रज भाषा और अवधी जैसी जनता की भाषाएँ साहित्य के सिंघासन पर आसीन हुई और महाकवियों के हाथ में पड़कर उनका पूर्ण विकास, परिमार्जन और परिष्करण हुआ उन्हें प्रौढ़त्व प्राप्त हुआ।

भक्ति आन्दोलन का जन्म सगुण और निर्गुण रूप में भक्तिकाल में महत्वपूर्ण स्त्रोत है। बौद्ध धर्म के ह्रास के बाद आठवीं शताब्दी में जागद्गुरु शंकराचार्य ने वैदिक धर्म की पुनः स्थापना की और अर्द्धमत का प्रचार किया। रामानुचार्य का विशिष्टाद्वैत, शंकर अद्वैत को आधार मानकर चार मतों के सहारे दक्षिण में स्थापना हुई। रामानुचार्य का विशिष्टाद्वैत मत, निम्बार्क का द्वैताद्वैत और मध्वाचार्य का द्वैत मत इस सगुण भक्ति का परिणाम ही है। हिन्दी साहित्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में इन्हीं विभिन्न मार्गों से प्रभावित होकर भक्ति धारा प्रभावित हुई।

निर्गुण संत मत के परिप्रेक्ष्य में वैष्णव का धार्मिक आन्दोलन पक्ष और संत संप्रदाय का घनिष्ठ संबंध होना एक पर्याय का रूप है। कबीर इसके प्रधान प्रवर्तक माने जाते हैं। कबीर ने रामानन्द से दीक्षा ग्रहण की। इस संबंध में डॉ. भरत सिंह उपाध्याय ने अपने ध्यान सम्प्रदाय नामक ग्रन्थ में एक और महत्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। उनका कहना है कि ध्यान सम्प्रदाय कोष्ठ में अपने नाम का सार खोजना बौद्ध धर्म की महायान शाखा के अन्तर्गत एशिया का एक महान सम्प्रदाय ग्रन्थ था। इसके संस्थापक दक्षिण भारत के योगी बौद्ध धर्म (आविर्भाव काल ई. की पाँचवी छठी शताब्दी के) इन्होंने संतो के अंग शब्द पर भी ध्यान सम्प्रदाय का (अर्थात् बौद्ध प्रयोग का प्रभाव है) कहा है। ध्यान सम्प्रदाय की भांति कबीर आदि तथा अन्य संतों की वाणी में अनुभव का विस्तार मिलता है। यहाँ तक की कबीर की उलटवासियों (बौद्ध परम्परा अनुसार) ''अंधेवेणु'' अंधों का वास – बांस को उलट कर देना अंधे का अंधे को बांस पकड़ कर ले जाना अर्थात् ब्राम्हण परम्परावादी धारा से उलटी बात कहकर चौकाना। डॉ. भरत सिंह उपाध्याय के अनुसार संत मत की विचार धारा पर नया प्रकाश पड़ता और भारत की एक विशेष चिन्ता धारा में उसका महत्वपूर्ण स्थान निर्धारित होता है। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर भक्तिकाल की निर्गुण पद्धति को पठकों के समक्ष चिन्तन करने की दिव्य दृष्टि सौंपी है।

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपने साहित्य के इतिहास में ग्यारहवे अध्याय में स्वतंत्रता काल शीर्षक को यथार्थवादी काल से भी काल से भी नामकरण किया है। इस यथार्थवादी काल का विवेचन करते हुये उन्होंन लिखा है कि द्वितीय महायुद्ध (1939–1945) की समाप्ति के लगभग दो वर्ष बाद 15 अगस्त 1947 को जब भारत स्वतंत्र हुआ तो उसके आधुनिक इतिहास का एक अध्याय समाप्त हो गया। अंग्रेजों के दासत्व से मुक्त होकर

देश स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए देश को जो संघर्ष करना पड़ा उसके इतिहास में जाने की आवश्यकता नहीं है।

देश में चारों ओर उल्लास की लहर फैल गयी किन्तु दुर्भाग्यवश स्वतंत्रता की साथ के साथ देश का विभाजन और उसके फलस्वरूप भीषण नरसंहार तथा मानवता पर बलात्कार महात्मा गांधी की हत्या (30 जनवरी 1948) ऐसी ऐतिहासिक दुर्घटनाएं घटित हुई, जिनसे देश में क्षोभ छा गया, तो ही बिटिश साम्राज्य के शिकंजे से मुक्ति प्राप्त कर देश ने स्वतंत्रता को सार्थक बनाने के उद्देश्य से सामंतवाद, साम्राज्यवाद और सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक शोषण से मुक्त भारतीय मानव की प्रतिमा स्थापित करना अपना लक्ष्य बनाया। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए देशी रियासतों और जमींदारी प्रथा का अंत कर दिया गया। विभाजन के फलस्वरूप विस्थापित जनता के जीवन को फिर से स्थापित करने की चेष्टा की गयी। आर्थिक दशा सुधारने के लिए विभिन्न पंचवर्षीय योजनाएं बनी। खाद्यान्न संकट और बेकारी दूर करने की चेष्टा की जाने लगी। यातायात और विद्युत उत्पादन सुधारने का प्रयत्न किया जाने लगा। शिक्षा एवं तकनीकी प्रगति के लिए विभिन्न कार्यक्रम प्रस्तुत हुए और स्वतंत्र देश की सरकार ने व्यापार, उद्योग धंधों और कृषि को उन्नति की ओर ध्यान दिया। शन्तिपूर्ण सहअस्तित्व और धर्म निरपेक्षता के आधार पर विदेशी और देशी राजनीति का स्वरूप स्थिर हुआ।[3]

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपने इस इतिहास ग्रन्थ में साहित्यिकता के एक कालक्रम को सुव्यवस्थित रूप से स्वीकार करके उन्हें यथोचित स्थान प्राप्त करवाया है। भारत पूर्ण प्रमुख सम्पन्न लोकतंत्रीय गणराज्य है और धर्म निरपेक्षता को दृष्टिपथ में रखते हुए वह मिली–जुली संस्कृति पर बल देता है। इस संविधान के अनुसार कई आम चुनाव की हो चुके हैं। गांव में भी जिला परिषदों पंचायतों ग्राम सभओं आदि के द्वारा नये जीवन का संचार करने की चेष्टा हुई। वास्तव में स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद गांव की जितनी तीव्रता के साथ आधुनिकीकरण हो रहा है उतना स्वयं नगरों का नहीं। बढ़ती हुई जनसंख्या का संकट रोकने के लिए परिवार नियोजन का प्रचार किया जा रहा है। तात्पर्य यह है कि हर तरह से देश को आत्म निर्भर, सुदृढ़ सशक्त बनाने के लिए सरकार उद्योगपति मजदूर और साधारण जनता सक्रिय होकर अपनी–अपनी भूमिकाओं का निर्वहन करने की चेष्टा कर रहे हैं।

## निष्कर्ष :–

समग्रालोचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास से संबंधित जितनी भी पुस्तके लिखी गयी हैं, उन सबमें डॉ. वार्ष्णेय के द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य का ग्रन्थ अनुपम एवं अलौकिक है। इस इतिहासपरक ग्रन्थ में उन्होंने नये उपादानों को प्रस्तुत किया है। उनका यह ग्रन्थ ऐतिहासिक प्रक्रिया का सबसे अनूठा ग्रन्थ है। इस ऐतिहासिक ग्रन्थ में उन्होंने सा.रा.धा.आ. गतिविधियों को जोड़ा है।

## संदर्भ :–

[1] डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 30, 31
[2] डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 52, 53
[3] डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 344